महाभारत पर कुछ विचार

सी.एन. सुब्रह्मण्यम एवं पी.के. बसंत

पिछली किश्त में हमने महाभारत कथा में दिए गए तत्कालीन समाज के वृतांत और हस्तिनापुर में किए गए उत्खनन से प्राप्त सामग्री का मिलान किया था। इससे यह संकेत मिलते हैं कि वर्तमान महाभारत कथा में लगातार सामग्री जुड़ती रही है, जिसकी वजह से इस कथा में जिस समाज की झलक दिखाई देती है वह किसी एक खास कालखंड का न होकर 1000-1200 वर्षों की एक लंबी अवधि का है।

इस बार हम महाभारत कथा के सन्दर्भ में प्रमुख इतिहासकार रामशरण शर्मा, रोमिला थापर और वी.एस. सुकथणकर के विचारों से आपको रू-ब-रू करवा रहे हैं।

डॉ. रामशरण शर्मा के विचार उनकी पुस्तक 'प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं' से और रोमिला थापर के विचार उनकी पुस्तक 'वंश से राज्य तक' से उद्धृत किए जा रहे हैं। इनके माध्यम से हम लेखकों के विचारों का परिचय देना चाहते हैं। परिचय को सुगम बनाने के लिए हम उनका सारांश प्रस्तुत कर रहे हैं, परन्तु यथासंभव हमने मूल के शब्द चयन को ज्यों का त्यों रखने का प्रयास किया है। जो भी पाठक इन लेखकों के विचारों को पूर्ण रूप से समझना चाहते हैं वे संदर्भित मूल पुस्तकों को पढ़कर लाभ उठा सकते हैं।

इन लेखों में बार-बार महाभारत के वर्णनात्मक व उपदेशात्मक अंशों का उल्लेख मिलेगा। हालांकि महाभारत के कई पर्व कहानी को आगे बढ़ाते हैं, कुछ खास पर्व जैसे -- शांति पर्व और अनुशासन पर्व मुख्य रूप से धर्म के बारे में उपदेश/शिक्षा देते हैं। इसे अलग-अलग विद्वानों ने अपने-अपने तरीकों से देखा है।

रामशरण शर्माः महाकाव्यों में सामाजिक विकास की प्रवृत्तियां

डॉ. रामशरण शर्मा देश के वरिष्ठ इतिहासकारों में से हैं। उन्होंने वैदिक काल तथा पूर्व-मध्यकाल पर कई निर्णायक ग्रंथों की रचना की है। कबीलों से मगध साम्राज्य के सफर पर उनकी 1983 में प्रकाशित चर्चित पुस्तक है -- प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं। उसका एक अध्याय महाकाव्यों पर आधारित है।

डॉ. शर्मा लिखते हैं-

> "रामायण तथा महाभारत और साथ में पुराणों ने (जिनमें भागवत पुराण मुख्य है), सामंतवादी मूल्यों में भारत की अनपढ़ जनता को शिक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।...
>
> महाभारत का एक महत्वपूर्ण उपोत्पादन भगवद्गीता है। इसमें कृष्ण, वर्ण-धर्मों के गुण तथा उनके पालन की आवश्यकता पर इतना अधिक बल देते हैं कि उनके अनुसार निर्धारित कर्त्तव्यों के पालन में जीवन की आहुति दे देना भी श्रेयस्कर है। वे इस बात पर भी बल देते हैं कि फल अथवा परिणाम की चिंता किए बिना ही व्यक्ति को अपने कर्त्तव्य-पालन को महत्व देना चाहिए। महाकाव्य, राजा के शासन को इस आधार पर विधिसंगत ठहराते हैं कि वह पितृसत्तात्मक परिवार की मर्यादा बनाए रखता है, व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा करता है, तथा वर्ण-धर्म को लागू करता है, और इसीलिए राजा को यदा-कदा विष्णु कहा गया है।...
>
> महाकाव्यों के शिक्षात्मक अंश एक विकसित तथा जटिल समाज की विशेषताओं को प्रतिबिंबित करते हैं। परन्तु, महाकाव्यों के अन्य भागों में ऐसी अनेक बातें हैं, जो इस प्रकार के समाज से मेल नहीं खाती हैं। जनजातीय तथा राज्यहीन समाज की आदिम प्रथाओं के पितृ-सत्तात्मक, वर्णविभाजित तथा राज्य पर आधारित समाज की परम्पराओं में मिल जाने के परिणामस्वरूप महाकाव्यों में अनेक विसंगतियां आ गई हैं। एक सर्वविदित उदाहरण है द्रौपदी के पांच पति होना। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पाण्डव बहुपति प्रथा को मानने वाले पहाड़ी लोग थे जो कौरवों के निकट संबंधी नहीं हो सकते थे। नियोग द्वारा पांच पाण्डव भाइयों की उत्पत्ति की कथा में भी मातृसत्तात्मक परम्पराओं के अवशेष निहित हैं।...
>
> अपने वर्तमान रूपों में महाकाव्य ईस्वी सन् की प्रथम चार शताब्दियों के जान पड़ते हैं। इनके अन्तर्गत मुख्य कथा, वर्णनात्मक अंश तथा उपदेशात्मक सामग्री आती है। मुख्य कथा के बीच-बीच में अनेक

मिथक आए हैं। महाभारत की मुख्य कथा में प्राचीन कालों की वास्तविकताओं की प्रतिध्वनियां सम्मिलित हो सकती हैं। यह उत्तर-वैदिक काल की जनजातीय व्यवस्था को प्रतिबिंबित कर सकती हैं, परन्तु इसके वर्णनात्मक एवं उपदेशात्मक अंश मौर्यकाल के बाद के तथा गुप्त काल के विकसित समाजों से संबंधित हैं।....

जब तक इस ग्रंथ के विभिन्न स्तरों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जाता, तब तक किसी प्रकार के सामाजिक अथवा सांस्कृतिक क्रम-निर्माण के लिए इस वृहद महाकाव्य का प्रयोग करना कठिन होगा।

जहां महाभारत के शिक्षात्मक तथा वर्णनात्मक अंशों का प्रयोग मौर्य-पूर्व, मौर्योत्तर एवं गुप्त कालों की सामाजिक व सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को प्रदर्शित करने के लिए किया जा सकता है, वहां कौरवों और पाण्डवों के संघर्ष से संबद्ध मुख्य कथा की ऐतिहासिकता एवं इसका निश्चित काल निर्धारित करना कठिन है। महाभारत युद्ध के समर्थन में परम्परा ही केवल एक साक्ष्य है, प्रायः तटस्थ विद्वान इसे ईसा पूर्व दसवीं शताब्दी के मध्य का मानते हैं।...

अब तक शोध के उद्देश्य से प्रत्येक महाकाव्य को समरूप इकाई के रूप में माना गया है, और इसी के अनुरूप अनेक अध्ययन प्रस्तुत किए गए हैं। प्राचीन भारत पर लिखी गई अनेक पाठ्य पुस्तकों में महाभारत काल नामक अध्याय शामिल किया गया है। परन्तु महाकाव्यों की सामग्री की विषम प्रकृति यह प्रदर्शित करती है कि महाकाव्य काल एक अनुपयोगी अवधारणा है तथा महाकाव्यों का सर्वोत्तम अध्ययन स्तरीकरण के आधार पर एवं सामान्य रूप से ज्ञात सामाजिक विकास की प्रकृतियों के परिप्रेक्ष्य में किया जा सकता है।....

महाभारत में दो किस्म के समाजों की स्पष्ट झलक मिलती है। एक - जनजातीय तथा दूसरा - क्षेत्रीय और वर्ण विभाजित, राज्य आधारित समाज; जिसमें कर-व्यवस्था, व्यावसायिक सेना तथा मंत्रीपरिषद और स्थानीय प्रशासन पर आधारित एक प्रशासन तंत्र की व्यवस्था है।...

उपदेशात्मक अंशों तथा अन्य पर्वों में प्राप्त अनेक उल्लेखों में भी जनजातीय समाज के अवशेष हैं। काल-क्रम की दृष्टि से इस प्रकार का समाज एक विकसित समाज से पूर्वकालिक रहा होगा। अनेक श्लोकों में राजा को 'विशाम्पति' अथवा जनजाति का मुखिया/संरक्षक कहा गया है। राजा के लिए प्रयुक्त उपाधि तथा 'जनेश्वर' उपाधि राजनैतिक व्यवस्था के जनजातीय स्वभाव को स्पष्ट रूप से प्रकट करते हैं। राजा का पद जनजाति-मुखिया के समान दृष्टिगोचर होता है।....

महाभारत युद्ध में यदि राजाओं के गुटों को देखें तो हम पाएंगे कि ये कौटिल्य के अर्थशास्त्र अथवा महाभारत के उपदेशात्मक अंशों द्वारा प्रतिपादित अंतर्राजीय संबंधों के मंडल सिद्धांत पर आधारित नहीं थे। पांडवों तथा कौरवों का पक्षधर प्रत्येक गुट मुख्यतः उनके नातेदारों और मातृ व पितृ पक्ष के संबंधियों से निर्मित था। राजनयिक संबंध व संधियों पर आधारित रिश्तों का अभाव था। ये बाद की मंडल आधारित व्यवस्था में महत्वपूर्ण हो गए थे।...

महाभारत के जनजातीय समाज में राजा आपत्ति काल में भी मंत्री परिषद की मंत्रणा द्वारा संचालित नहीं होता है। यह केवल शांति पर्व के राज्य आधारित समाज में ही दृष्टिगोचर होता है। दूसरी ओर, जनजातीय परंपरा के अनुरूप वह अपने नातेदारों तथा मित्रों से सलाह लेता है। यह भी महत्वपूर्ण है कि नातेदारी के एक सदस्य द्वारा लूटी गई संपत्ति में अन्य सभी नातेदार समान भाग का दावा करते हैं। अर्जुन द्वारा द्रौपदी को जीतने के प्रसंग से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है।....

दूसरी ओर, शांतिपर्व में वर्ण विभाजित तथा राज्य पर आधारित समाज के कार्य-कलापों का प्रतिबिंब है।...

शांति पर्व में हम एक भिन्न प्रकार का आदान-प्रदान तथा बंटवारा देखते हैं। यहां हमें एक नियमित कर-व्यवस्था दिखाई देती है तथा कर-निर्धारण करने के कुछ नियमों को प्रतिपादित किया गया है। इसके अलावा यह महत्वपूर्ण है कि इसमें मज़दूरों, चरवाहों आदि के वेतन भुगतान के विषय में विस्तृत नियम दिए गए हैं।....

इस प्रकार महाभारत का शीघ्रता से किया गया परीक्षण भी संकेत करता है कि एक जनजातीय व राज्य विहीन समाज एक ऐसे वर्ग-विभाजित व राज्य आधारित समाज में परिवर्तित हो गया, जिसमें कर-व्यवस्था, प्रशासन तंत्र, व्यावसायिक सेना आदि विद्यमान थे। यह समझा जाता था कि राज्य की जड़ें सेना और कोश में स्थित हैं, एवं सेना की जड़ें कोश अथवा कर व्यवस्था में हैं। यह बात एक ऐसे समाज की पूर्व-कल्पना की द्योतक है, जिसमें वैश्य एवं शूद्र मुख्य उत्पादक एवं अधिशेष उत्पादन व श्रम करने वाले प्रतीत होते हैं। शांति पर्व सूचित करता है कि भूमि-राजस्व का विभाजन असमान था परन्तु यह असमान विभाजन स्वयं भूमि पर लागू नहीं था। तथापि, कुछ आर्थिक एवं प्रशासनिक व्यवस्थाएं एक ऐसे समाज के प्रारंभ को प्रतिबिंबित करती हैं, जिसमें भूस्वामी एक मध्यस्थ वर्ग के रूप में विकसित होते प्रतीत होते हैं।”

* * * *

रोमिला थापरः अराज्य से राज्य तक पहुंचना

रोमिला थापर 1984 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'वंश से राज्य तक' में अराज्य (कबीलाई स्थिति) से राज्य की स्थिति तक पहुंचने के संक्रमणों का विस्तार से विमर्श करती हैं। इस दौरान उन्होंने महाभारत के विविध पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त किए हैं जिन्हें हम यहां दे रहे हैं।

"महाभारत और रामायण का संकलन कई चरणों में हुआ है। इसके आलोचनात्मक संस्करण काफी प्रशंसनीय हैं लेकिन इनमें भी इनके मूलरूप या उसके आसपास तक पहुंचना संभव नहीं हुआ है। इनमें ईसा की प्रथम सहस्राब्दी के मध्य तक काट-छांट होती रही है फिर भी इन महाकाव्यों के कुछ अंशों में पुराने समाज का चित्रण है। संभवतः इन अंशों में ई.पू. प्रथम सहस्राब्दी के प्रारम्भ के समाज की झांकी मौजूद है।....

वंशप्रणाली से राज्य तक संक्रमण की धारा इतिहास-पुराण साहित्य में दिखलाई पड़ती है। इतिहास-पुराण का उल्लेख प्राचीन भारतीय परम्परा के रूप में किया जाता है।....

इतिहास-पुराण परम्परा के प्राचीन खण्डों में मुख्य रूप से वंशावलियों का वर्णन होता है। यह उस समाज के लिए बड़े महत्व का विषय था जिसमें सगोत्रता ही प्रतिष्ठा, भूमि के स्वामित्व, सम्पत्ति, विवाह-संबंध और कबीले की पहचान का निर्धारण करती थी। वंशावलियां ही इस परंपरा के केन्द्र में हैं।....

पुराणों के अतिरिक्त इतिहास-पुराण की परम्परा महाभारत और रामायण में भी मिलती है। इनकी वंशावलियों और मिथक कथाओं में एकरूपता नहीं है लेकिन इनमें साम्य अवश्य है। महाभारत-रामायण में संभवतः संपादित पुराणों के प्राचीन रूप निहित हैं जो पुराणों को अंतिम रूप मिलने से पहले के हैं। रामायण-महाभारत में राज्य के अनस्तित्व से राज्य के अस्तित्त्व तक संक्रमण की प्रक्रिया अप्रत्यक्ष रूप में मिलती है। इन दोनों महाकाव्यों के प्राचीन खण्डों में जिस समाज का चित्रण है, वह वंश-प्रणाली के निकट है। इनके परवर्ती खण्डों का समय वह काल है जब वंश-प्रणाली का ह्रास और राज्य का उदय हो चुका था।....

महाभारत के कई विवरणात्मक पर्व राज्य व्यवस्था के उदय के ठीक पहले के काल का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुरु जनपद का ढांचा उन लक्षणों से मिलता-जुलता है जिनका हमने पश्चिमी गंगाघाटी के प्रसंग

में उल्लेख किया है। राजनैतिक संस्थाएं सामाजिक संबंधों की भांति गोत्र पर आधारित हैं। प्रधान कर्मकांड यज्ञ था। अर्थव्यवस्था का मेरुदंड पशुपालन और कृषि थी। कृषि भूमि पर कुल का स्वामित्व होता था। अभी निजी स्वामित्व वाले भूखण्डों में कृषि भूमि का विभाजन नहीं हुआ था।

कुरु राज्य में उत्तराधिकार राजन्य वंश तक सीमित था जबकि दोनों प्रतिस्पर्धियों में किसी में कुरुवंश का रक्त न था। कुरुवंश तो वास्तव में भीष्म पर आकर समाप्त हो चुका था। यहां से वंशावली में कृत्रिम तरीके से तोड़-जोड़ कर संबंध जोड़ने की आवश्यकता पड़ी। इसके लिए देवताओं को भी बीच में लाना पड़ा। चाहे जो भी हो, महत्व की बात यह है कि इस प्रकार वंश से संबंध जोड़ना वृत्तान्त के लिए आवश्यक था।

यादवों की अवस्था तो राज्यप्रणाली से और भी दूर थी। यादवों में अंधक-वृष्णि कुल का शासन चलता था। कृष्ण इनके प्रमुख व्यक्ति थे। कृष्ण विष्णु के अवतार थे इसलिए वे उत्तराधिकार के संघर्ष से बाहर थे। उनकी भूमिका सहानुभूति वाले रिश्तेदार की थी। शिशुपाल का वध आवश्यक था क्योंकि गोत्र के आधार पर हैसियत के निर्धारण के प्रति उसे आपत्ति थी। कृष्ण ने सारथी की भूमिका स्वीकार की। इसका प्रतीकात्मक मूल्य चाहे जो भी हो इससे एक कबीलाई अतीत का ही आभास मिलता है। महाभारत के उपदेश वाले अंश में वैदिक काल के बाद के समाज का चित्रण है। इसमें राज्य के अस्तित्व को मानकर चलते हैं। इन अंशों में नृपतंत्र (राजा आधारित राजनैतिक व्यवस्था) को ही राज्य का उत्तम प्रकार माना गया है और इस प्रकार इनमें राज्य का सूक्ष्म समर्थन किया गया है। राजधर्म और मोक्षधर्म पर्वों में यह स्वयंसिद्ध धारणा है। वंशप्रणाली की एक विशेषता यह थी कि तनाव और संघर्ष (विशेषकर राजनीतिक) के शमन के लिए वंश की कोई शाखा दूसरे स्थान पर जा बसती थी। महाभारत में वंश समाज की यह विशेषता ध्यान देने योग्य है। पाण्डव हस्तिनापुर से हटकर इंद्रप्रस्थ में बस जाते हैं और अंधक-वृष्णि मथुरा से द्वारका चले जाते हैं। बार-बार निर्वासन के उल्लेख भी अंशतः वंशों के बंटने के ही परिणाम रहे होंगे क्योंकि उत्तराधिकार की वैधता और सत्ता के संकट के अवसरों पर रामायण और महाभारत में वनवास का उपयोग किया गया।....”

रोमिला थापर मानती हैं कि इतिहास-पुराण परंपरा बहुत बाद के काल तक संपादित होने के बावजूद प्राचीन ऐतिहासिक दृष्टिकोण को समझने के लिए

महत्वपूर्ण स्रोत हैं। उनके अनुसार इस परंपरा में दो प्रमुख काल विभाजकों का उपयोग हुआ है - एक प्रलय और दूसरा महाभारत युद्ध।

> "प्रलय एक काल विभाजक बनता है क्योंकि प्रमुख वंशों की वंशावलियां प्रलय में बचने वाले एक मात्र मनुष्य - मनु से अपना नाता जोड़ती हैं। उसका पहला बेटा इक्ष्वाकु - सूर्यवंश शुरू करता है। मनु के छोटे बेटे ऐल का वंश कई हिस्सों में बिखरता गया।....
>
> वंश की सभी शाखाओं में रक्त संबंध हो यह ज़रूरी नहीं है। इनमें वे वंश भी सम्मिलित हो गए हैं जिन्हें जीत कर या विवाह के द्वारा आत्मसात कर लिया गया था। इसलिए वंशावलियां स्थानांतरण, दूसरे वर्गों के आत्मसातीकरण और मैत्री संबंधों के दस्तावेज़ हैं। इनमें वंश से रक्त संबंध जोड़कर वैधता के दावे पर ज़ोर दिया गया है। पैतृक उत्तराधिकार महत्वपूर्ण नहीं हैं। पौरव वंश और कौरवों और पाण्डवों के संबंधों से यह बात स्पष्ट हो जाती हैं, वंश-संबंध का महत्व क्षत्रियत्व का दावा पेश करने और जनपद पर अधिकार के अभिकथन में है। मध्य गंगाघाटी में कृषिप्रधान समाज सुव्यवस्थित हो चुका था। यहां प्राचीन काल से ही विरासत महत्वपूर्ण मुद्दा रहा होगा। उत्तराधिकार के नियम निर्धारित रहे होंगे। किन्तु पश्चिम और मध्य भारत में सघन बसाहट अभी तक नहीं हुई थी। यहां पशुपालकों और कृषकों के बड़े-बड़े समुदाय थे। इसलिए उत्तराधिकार की कामना सभी वरिष्ठ वंशों को रही होगी और इसके लिए संघर्ष भी होते रहे होंगे।
>
> वंशानुचरित का दूसरा काल विभाजक महाभारत का युद्ध था। चंद्रवंश की सभी प्रमुख शाखाओं और अन्य वंशों के भी राजा युद्ध में भाग लेने आए थे। संभवतः उत्तराधिकार के लिए एक जन के भीतर आपसी संघर्ष ने एक युगांत का रूप धारण कर लिया। शायद वास्तविकता यह थी कि इसके साथ क्षत्रिय मुखियाओं का युग समाप्त हो गया। एक प्रकार से महाभारत के युद्ध ने इस राजनीतिक व्यवस्था को समाप्त कर दिया। इससे मध्य गंगाघाटी में नृपतंत्र का मार्ग प्रशस्त हो गया। नृपतंत्र में पहले वाली व्यवस्था की कुछ बातें रह गईं। जैसे इस बात पर ज़ोर देना कि राजा क्षत्रिय वर्ण का ही होना उत्तम है जबकि तथ्य यह है कि कई राजा क्षत्रिय नहीं थे। कुछ ने अपने को क्षत्रिय सिद्ध करने के लिए जाली वंशावलियां बनवाईं। देखने की बात यह है कि युद्ध के लिए स्थान कुरुक्षेत्र को चुना गया जिसका संबंध क्षत्रियों के प्रमुख वंश (कुरु) से था। यह भी मार्के की बात है कि युद्ध पश्चिम गंगाघाटी में हुआ था, न कि मध्य गंगाघाटी में जहां राज्य निर्माण का संक्रमण

आसानी से हुआ। **महाभारत युद्ध का शोक, कुल-बंधुओं के संहार के लिए ही नहीं बल्कि एक मरणशील समाज, शैली और राजनीतिक व्यवस्था के लिए भी था।** कलियुग की कल्पना प्राक्तर समाज के प्रति रोमांस की भावना के साथ-साथ परिवर्तनशील व्यवस्था में असुरक्षा की भावना की उपज है। जब भी कोई बड़ा परिवर्तन होता है तो कलियुग का भय उभर आता है।"

* * * *

सुकथणकर: महाभारत का अर्थ

आपने पिछले अंकों में पढ़ा होगा कि वी.एस. सुकथणकर को महाभारत के समालोचनात्मक संस्करण का श्रेय दिया जाता है। वे प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन में आधुनिक पाश्चात्य तरीकों के उपयोग के लिए जाने जाते थे। फिर भी महाभारत के प्रति उनका प्रेम व निष्ठा अपार था। उन्होंने महाभारत के बारे में 'महाभारत का अर्थ' शीर्षक से चार व्याख्यान दिए जिनके आधार पर लेख का यह हिस्सा तैयार किया गया है। वे स्वीकार करते हैं कि महाभारत किसी एक समय, एक व्यक्ति द्वारा नहीं लिखा गया। वे यह भी मानते हैं कि समय के साथ इसमें बातें जुड़ती गई हैं। फिर भी उनके अनुसार वे सारे कवियों, जिन्होंने महाभारत के बनने में योगदान दिया, ने एक समग्र दृष्टिकोण का ही विकास किया।

महाभारत व उसके आलोचक

जर्मन विद्वान हरमन ओल्डबर्ग ने लिखा, "महाभारत एक सरल गाथा के रूप में शुरू हुआ। शताब्दियों के चलते वह एक दैत्याकार जंजाल बन गया।" मूल कहानी के साथ-साथ उपाख्यानों का जंगल, और धर्म, दर्शन, विज्ञान, कानून, राजनीति... आदि पर अंतहीन व असंख्य निर्देश, विद्यमान हैं।..." इस प्रकांड विद्वान का यह निष्कर्ष सही भी लग सकता है। मेथ्यू अर्नाल्ड ने कहा था कि किसी महाकाव्य की विषयवस्तु कोई *एक* जटिल व महान कार्य होना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि महाभारत कथा के मूल में ऐसा ही एक महान व जटिल कार्य है। लेकिन उन तमाम आख्यानों व नैतिक चर्चाओं के कारण, इस मूल कहानी तक पहुंचना अक्सर नामुमकिन हो जाता है। समय के साथ जोड़े गए अंशों के कारण ऐसा भी लगता है कि इस महाकाव्य में एकात्मता नहीं है। महाभारत के संपादक व अनुवादक आर.सी. दत्त ने

सन् 1898 में लिखा--

"यह महाकाव्य इतना लोकप्रिय हुआ कि वह समय के साथ बढ़ता ही गया। हर पीढ़ी के कवियों ने उसमें कुछ जोड़ा; भारत के हर राष्ट्र ने उसमें अपने पूर्वजों की कथा को जोड़ना चाहा; हर नए संप्रदाय के प्रवर्तक ने अपने मत के समर्थन में कुछ बातें उसमें जोड़नी चाहीं। कानूनी व नैतिक ग्रंथों के अंश उसमें जोड़े गए क्योंकि कोरे कथनों की तुलना में वे ज़्यादा कारगर थे। .... इनके बीच मूल-कथा खो सी गई।" लेकिन उन्हें यकीन था कि इस मूल को बाद के जोड़तोड़ से अलग किया जा सकता है।

पाश्चात्य विद्वान इस बात से हमेशा परेशान रहे कि इस कथा में - कथा की सीख कथा से चार गुना लंबी है। अतः वे शुरू से इस प्रयास में लगे कि महाभारत के प्राचीन व बाद के अंशों को अलग करें, मूल व थिगड़ों को अलग कर पाएं और मूल गाथा को उस घुटन भरे जंजाल से मुक्त करें। इस दिशा में सन् 1829 से कई प्रयास हुए।

सबसे पहले क्रिस्टियन लासन ने अनुमान लगाया कि मुख्य कथा 450 ई. पू. के आसपास की रही होगी। उसके बाद इसमें कृष्ण संप्रदाय से संबंधित अंश जोड़े गए जिन्हें अलग करने पर मूल पर पहुंचा जा सकता था। शायद उन्हें यह आभास नहीं हुआ कि महाभारत से कृष्ण संबंधित बातों को हटाने से उसके समस्त जीवन्त व कारक हिस्से भी हट जाएंगे और वह महाकाव्य निर्जीव व टूटा-फूटा रह जाएगा।

पाश्चात्य समालोचना ने माना था कि महाभारत के मूल में एक आद्य वीर-गाथा है जिसमें बाद में कई बातें जुड़ती गईं। अतः उनका ध्येय इन दोनों को अलग करना था। लेकिन यह एक आश्चर्यजनक सच्चाई है कि यह वृहद् ग्रंथ संतुलित है और ढांचागत दृष्टि से दोषरहित। इस बात की ओर लुडविग जैसे कई पाश्चात्य विद्वानों ने भी ध्यान खींचा - कि इतने बड़े महाकाव्य में तमाम जोड़तोड़ के बावजूद कोई भद्दा विरोधाभास नहीं दिखता। यानी महाभारत में एक आंतरिक समायोजना और एकात्मकता है, जिसे मूल और अन्य में बांटा नहीं जा सकता।

इस मुद्दे पर सन् 1895 व 1898 में महान जेसुइट (एक इसाई संप्रदाय) विद्वान जोसेफ डालमन ने दो महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित की। उनके अनुसार महाभारत के कहानी वाले हिस्से व नीति-उपदेशात्मक हिस्सों को अलग करके नहीं देखा जा सकता। दोनों एक योजना के तहत एक-दूसरे के पूरक के रूप में कहे गए हैं। अतः काव्य को छिन्न-भिन्न किए

बिना उन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। भारतीय समाज के धर्म-अधर्म से संबंधित *कानूनी* सिद्धांतों को प्रतिपादित करने के लिए यह कहानी और उपदेशात्मक अंश रचे गए थे। डालमन का मानना था कि पूरा महाभारत एक समय एक व्यक्ति द्वारा एक उद्देश्य से रचा गया था।

डालमन इस हद तक सही हैं कि महाभारत के विभिन्न अंश एक योजना के तहत समाहित हुए हैं। मगर आज हमें स्पष्ट है कि इसका रचयिता कोई एक व्यक्ति नहीं था, न ही यह किसी एक समय में रचा गया था। दूसरा, कानूनी बातें इस ग्रंथ के महत्वपूर्ण हिस्से तो हैं मगर उसकी आत्मा नहीं हैं। अगर यह भारतीय जन-जन के बीच हज़ारों सालों से लोकप्रिय रहा तो इसका कारण इसकी कानूनी विवेचना नहीं हो सकती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि डालमन केवल धर्मराज युधिष्ठिर को समझ पाए - कृष्ण जो धर्म और अधर्म से परे थे और पूरे काव्य में व्याप्त हैं, उन्हें समझ नहीं पाए।

इस अंश को खत्म करने से पहले हम एक बात पर गौर करें। क्या ये आश्चर्यजनक नहीं है कि पाश्चात्य विद्वानों का यह कथन कि महाभारत केवल असंबद्ध आख्यानों व उपदेशों का संकलन है, के बावजूद इस ग्रंथ को भारतीय इतिहास में सदैव महान साहित्य का दर्जा दिया गया? बाण के समय इसे शिक्षण का साधन माना गया; भारत के तमाम कवि व नाटककारों ने इसमें कथानकों का अनन्त स्रोत पाया; कुमरिल और शंकर जैसे महान दार्शनिकों, ज्ञानेश्वर व रामदास जैसे महान संत, अकबर व शिवाजी जैसे सम्राटों ने इससे प्रेरणा ली। यह बर्मा और बाली द्वीप तक फैला जहां के स्थानीय मूर्तिकारों ने इसके आधार पर मूर्तियां बनाईं और स्थानीय कलाकार इसे नृत्य नाटिका के रूप में प्रस्तुत करते आए हैं।

यह और भी आश्चर्यजनक है कि यह केवल बुद्धिजीवी ही नहीं बल्कि सामान्य, अशिक्षित जनता -- 'बढ़इयों व कहारों' के जीवन में स्पंदन करता है। ओल्डनबर्ग जिनके कथन से हमने इस व्याख्यान की शुरुआत की थी खुद कहते हैं: ''महाभारत में भारत की एकीकृत आत्मा और उसके प्रत्येक निवासी की आत्मा जीवित है।''

जिस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक परमाणु को तोड़कर उसमें कैद ऊर्जा को मुक्त करना चाहते हैं उसी प्रकार प्राचीन भारत के ऋषि मनुष्य के

उलझे हुए व्यक्तित्व को तोड़कर उसकी ऊर्जा को प्रवाहित करना चाहते थे। महाभारत के वृहद चित्रकार इसी विचार से अभिभूत थे। महाभारत श्रेष्ठतम भारतीयों के मूल्यों का सुनहरा खज़ाना है -- इसी कारण सदी-दर-सदी महान भारतीयों ने इससे प्रेरणा ली।

महाभारत का नैतिक धरातल

महाभारत की विषयवस्तु सिंहासन पर कब्जा करने के लिए एक कुल की दो शाखाओं के बीच विनाशकारी संघर्ष है। एक छोटे से उत्तर भारतीय राज्य के उत्तराधिकार के लिए ईर्ष्या व षडयंत्र-युक्त संघर्ष की कहानी को देव-असुर धर्म-अधर्म के आद्य संघर्ष के परिदृश्य में प्रक्षेपित किया गया है। इसी कारण इस सामान्य कहानी को इतनी गहराई व महत्व मिल पाया। महाभारत में शुरू से ही माना गया है कि उसके पात्र देव व असुर के प्रतिरूप हैं और श्रीकृष्ण सर्वोच्च ईश्वर हैं। इन तीनों के बीच विकसित होने वाले रिश्ते व संघर्ष ही महाभारत है।

धर्म-अधर्म संघर्ष के परिदृश्य में प्रक्षेपित होने के कारण महाभारत को एक सार्वभौमिक वैधता मिली। आक्रांता और उनके शिकार लोग, तानाशाह व सामान्य जनता, पूंजीपति और मज़दूर, साहूकार व कर्ज़दार.... इनके संघर्षों का भी महाभारत एक प्रतीक बन जाता है। जीवन में बार बार दोहराने वाली वे परिस्थितियां, यानी महाभारत की विषय-वस्तु आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी वह दस हज़ार साल पहले थी। महाभारत का आग्रह है कि हमें परिस्थिति के अनुरूप ऐसी परिस्थितियों के प्रति उम्मीदपूर्ण धैर्य, तर्कपूर्ण संयम, प्रेमपूर्वक विरोध और सबसे महत्वपूर्ण, अध्ययनपूर्ण दूरी बनाए रखना चाहिए। (hopeful fortitude, reasoned restraint, benovolent ophasition, contemplative aloofness).

नीतिशास्त्र के स्तर पर यह काव्य पाठक या श्रोता में नीतिगत मूल्यों की सर्वोच्चता का स्मरण करवाता है। युधिष्ठिर को कुंती का यह अंतिम उपदेश महाभारत का 'मोटो' कहा जा सकता है -

धर्मे ते धीयताम बुद्धिः मनस् तु महद् अस्तु च।

तुम्हारी बुद्धि धर्म में स्थिर रहे। तुम्हारा मन हमेशा महान बना रहे।

महाभारत और योग

महाभारत का मकसद इतना ही नहीं - और भी था। वह हमें धर्म की प्रधानता से आगे -- देव-असुर या धर्म-अधर्म के संघर्ष से भी आगे ले

जाता है। भारतीय चिंतन में धर्म-अधर्म, अच्छाई-बुराई - दो विपरीत तत्व नहीं - इन दोनों को एक परम तत्व से निकले और उसी में समा जाने वाला पक्ष माना गया। धर्म व अधर्म एक-दूसरे के पूरक हैं और उनके द्वंद्व से दुनिया चलती है। भारतीय दर्शन के अनुसार ब्रह्म, आत्मन् या परमात्मन् इनसे भी परे है। महाभारत इस परमतत्व को आम मनुष्य को समझाने का प्रयास है। श्रीकृष्ण, महाभारत के केन्द्रीय पात्र हैं, जो अर्जुन से कहते हैं - हर जीव में निवास करने वाली आत्मा हूं।

देवकीनंदन कृष्ण या पाण्डव अर्जुन वास्तव में जो भी रहे हों, महाभारत के कवियों के लिए वे परमात्मन् और जीवात्मन् के प्रतीक थे। उन कवियों के लिए ये प्रतीक वास्तविक बन गए और वास्तविक लोग मात्र परछाई बनकर रह गए।

यह मेरी धारणा नहीं है, यह प्राचीन टीकाकारों का विचार है, भारतीय जन साधारण जिनकी अमानत महाभारत है, उनकी धारणा है। खुद महाभारत में इस बात को बार-बार कहा गया है।

अर्जुन या जीवात्मन् को जो युद्ध लड़ना है वह उसे स्वयं के अन्दर अपने ही निम्न स्तर के व्यक्तित्व से लड़ना था।

जिसके द्वारा अपनी आत्मा विजित है उसके लिए उसकी आत्मा मित्र है। लेकिन जिसकी आत्मा अनियंत्रित है उसके लिए उसकी ही आत्मा सबसे बड़ा विरोधी है। (गीता 6.6)

यही प्रतीकात्मक चित्रण महाकाव्य के अन्य पात्रों में भी देखा जा सकता है, चाहे वह धृतराष्ट्र हो या दुर्योधन।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि महाभारत को केवल इस दृष्टि से समझा जा सकता है - मूल वीर गाथा की खोज से नहीं। जो भी मूल गाथा रही हो उसे भृगुओं ने पूर्णतया आत्मसात करके अपने महाभारत में शामिल किया। आज उस मूल गाथा को खोजना व्यर्थ काम है। उस गाथा के तत्वों को इस तरह परिवर्तित करके गूढ़ प्रतीकों व अविनाशी मूल्यों से मिलाकर परोसा गया है ताकि हम अपने जीवन को उसकी पृष्ठभूमि में देख पाएं और अमरत्व के परिदृश्य में अपना जीवन व्यतीत करें।

श्रीकृष्ण अर्जुन से सतत् आग्रह करते हैं कि वह योगी बने। महाभारत का मूल दर्शन है, समत्व - जो गीता का भी सार है। गीता में कहा गया - "समत्वं योगं उच्छयते। समत्व एक प्रकार का संतुलन है - खुशी, दुख, क्रोध, इन सबके बीच एक योगी संतुलन रखता है, और अपने आपको उनसे अलग भी रखता है।"

योगी जीवन के मूल्य को समझता है और उसे बेहतर बनाना भी चाहता है और उसके लिए अनुभवों के सागर के बीच समत्व की मदद से पार करता है। यही त्याग है, संन्यास है।

इस महाकाव्य के कविगण अपने पूरे सामर्थ्य के साथ आत्म दर्शन का बखान कर रहे हैं। वह दर्शन जो नैतिक दायित्व और उम्मीद की बात करता है और उसे दैनिक जीवन की समस्याओं के निराकरण के लिए उपयोग करने पर ज़ोर देता है।

जब हम इन बातों पर गौर करते हैं - तो हम द्रौपदी की शादी की ऐतिहासिकता या पाण्डवों के मूल की खोज या महाभारत युद्ध के तिथि निर्धारण या महाभारत के उद्‌भव व विकास की बातों से कम आकृष्ट होते हैं। वे ज़रूर महत्वपूर्ण होंगी, मगर वे अभी भी इस महान ग्रन्थ की बाहरी परिधि से ही सम्बन्ध रखती हैं, मूल तत्व से नहीं जो कि जीवन के अस्तित्व की समस्या पर केन्द्रित है।

सी. एन. सुब्रह्मण्यमः एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से जुड़े हैं।
पी. के. बसंतः दिल्ली में स्थित जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में इतिहास पढ़ाते हैं।

इस लेख के लिए निम्न संदर्भ पुस्तकों से मदद ली गई है।

'प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं'
लेखक रामशरण शर्मा। प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1990 संस्करण

'वंश से राज्य तक' लेखक रोमिला थापर।
प्रकाशक - ग्रंथशिल्पी, दिल्ली, 1997 संस्करण

चूंकि उपरोक्त पुस्तकों से कुछ ही अंश चुने गए हैं एवं सारांश करते वक्त उन्हें संपादित किया गया है, अतः लेखकों के विचारों का संदर्भ देने के लिए संदर्भ पत्रिका के इस लेख का उल्लेख करना उचित न होगा।

